गेरूआ रोग की कहानी का नया संस्करण

डॉ. किशोर पंवार

गेरुआ रोग को शायद कई लोग भूल चुके होंगे। यह *पक्सीनिया* नामक फफूंद के कारण होने वाला रोग है जो गेहूं को प्रभावित करता है। महत्व की बात यह है कि गेरूआ रोग फैलाने वाली इस फफूंद का एक नया रूप सामने आया है जो युगांडा में 1999 में देखा गया था। यह एक अति-संक्रामक खतरनाक रूप है जो फसल को लगभग 80 प्रतिशत तक खत्म कर देता है। यहां प्रस्तुत है *पक्सीनिया* के पेचीदा जीवन चक्र की दास्तान।

पक्सीनिया ग्रेमिनिस एक रोगकारी फफूंद है। भारत में इसकी लगभग 150 उप-प्रजातियां मिलती हैं। *पक्सीनिया ग्रेमिनिस ट्रीटीसी-एफ* पूर्णरूपेण आंतरिक परजीवी कवक है जो पोषक यानी रोगग्रस्त पौधे के शरीर के अंदर रहता है। यह एक बहुरूपी कवक है अर्थात कई रूपों में पाया जाता है। यह परपोषी और लंबे जीवन चक्र वाली फफूंद है। इसके जीवन चक्र में एक-दो नहीं पूरे पांच प्रकार के बीजाणु बनते हैं। इसका जीवन चक्र दो पोषक जीवों में पूर्ण होता है। मज़ेदार बात यह है कि इसका प्राथमिक पोषक गेहूं है जो मैदानी एक-बीजपत्री फसली पौधा है, जबकि दूसरा पोषक एक दो-बीजपत्री पहाड़ी झाड़ी बारबेरिस है।

जाहिर है इसे अपना जीवन चक्र पूरा करने के लिए क्रमशः दो पोषकों के पास जाना होता है और मैदानों से पहाड़ों तक दौड़-भाग करनी पड़ती है। यह भागम-भाग है बड़ी मज़ेदार। चूंकि इसके बीजाणु चल नहीं सकते अतः इसे अन्य सहारों की मदद लेनी पड़ती है। तो यह हवा की मदद लेता है। *पक्सीनिया ग्रेमिनिस ट्रीटीसी* का अध्ययन करने में एन्टान डी बेरी और तुलसने भाइयों का बड़ा योगदान है। पूरी दुनिया में इस रोगकारी पर सदियों से शोध हो रहा है। हमारे देश में भी प्रो. के.सी. मेहता, प्रो. जोशी एवं नागराजन ने *पक्सीनिया* यानी गेरूआ रोग के फैलाव पर महत्वपूर्ण कार्य किया है। और यह सिलसिला अभी थमा नहीं है क्योंकि जब तक गेहूं है तब तक गेरूआ रहेगा। दोनों का चोली-दामन का साथ है। हमें अपना पेट भरने के लिए गेहूं के दाने चाहिए तो *पक्सीनिया* को अपना जीवन चलाने के लिए गेहूं की पत्तियां और तने चाहिए। यही इसका भोजन है। *पक्सीनिया* के संक्रमण से गेहूं का पौधा कमज़ोर हो जाता है। कभी-कभी तो इतना कमज़ोर कि बीज बनाने और बचाने की ताकत भी नहीं रहती इसके पास। किसान कहता है दाना सिकुड़ गया, अकाल पड़ गया।

खैर गेरूआ के कारण अकाल पड़ने की विवेचना करने के पहले इस अति-महत्वपूर्ण रोगकारी का जीवन चक्र जान लेना अच्छा होगा। दुश्मन को जब तक अच्छी तरह जान नहीं लेंगे तब तक उससे निपटेंगे कैसे? और आपकी जानकारी के लिए बता दूं कि यह दुश्मन हमारी सीमाओं के पार ही खड़ा है। जाने कब सीमा पार से अंदर घुस आए। इसे दुनिया की कोई सेना नहीं रोक सकती। इसका मुकाबला तीर-तलवार और बंदूकों से नहीं वैज्ञानिक शोध से ही किया जा सकता है। इसका नया रूप *पक्सीनिया ग्रेमिनिस ट्रीटीसी-यूजी-99* है। अन्य प्रजातियों की तरह यह द्विनामी नहीं

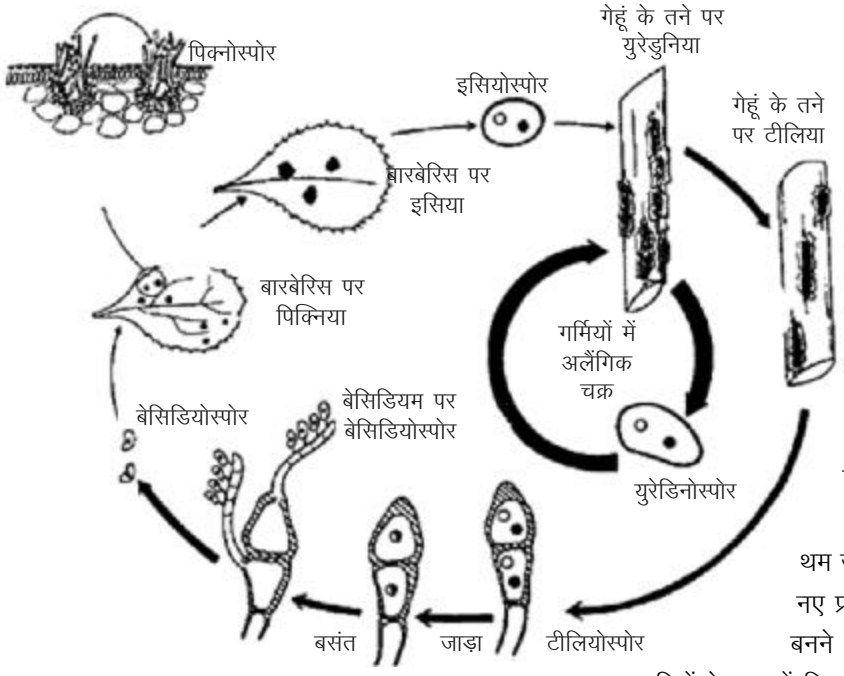

चतुर्नामी हो गया है। यानी *पक्सीनिया ग्रेमिनिस* का वह रूप जो गेहूं के पौधों को संक्रमित करता है और यूजी-99 यानी इसी का एक नया प्रकार। नाम बहुत बड़ा है ना? काम की बात यह है कि यह गेरूआ रोग फैलाने वाली इस फफूंद का एक नया रूप है जो यूगांडा में 1999 में देखा गया था। यह इस फफूंद का एक अति-संक्रामक खतरनाक रूप है जो फसल को लगभग 80 प्रतिशत तक खत्म कर देता है।

यह गेहूं की पत्तियों और तनों पर छोटी-छोटी गेरूए रंग की धारियों के रूप में दिखाई देता है। जल्दी ही ये पत्ती के अंदर बन रहे यूरीडोस्पोर (फफूंद के बीजाणु) के दबाव से फट जाती हैं और लाल-सा पावडर पत्तियों पर बिखर जाता है। प्रत्येक यूरीडोस्पोर एक कोशिकीय, डंठलयुक्त एवं दो केंद्रक वाला होता है। इनकी बाहरी सतह खुरदरी होती है। सूक्ष्मदर्शी में ये हल्के पीले रंग के दिखते हैं।

यूरीडोस्पोर बिखरने के चार-पांच दिनों में ही पर्याप्त नमी होने पर उसी गेहूं की पत्तियों पर या पास के खेत की फसल पर अंकुरित हो जाते हैं। ये पोषक के शरीर में पत्तियों में स्टोमेटा से प्रवेश करते हैं। वहां पत्तियों के अंदर ही अंदर ये अपना कवक जाल बनाते हैं। संक्रमण के 10 से 14 दिन में ही यूरीडोस्पोर अपनी एक नई फसल तैयार कर लेते हैं जो फटकर एक बार फिर से नए पौधों को संक्रमित करने के लिए तैयार हो जाती है। इस तरह से एक-डेढ़ महीने में ही इनकी कई फसलें तैयार हो जाती हैं जो देखते ही देखते इस रोग को एक बड़े क्षेत्र में फैला देती हैं।

गर्मी बढ़ते ही यूरीडोस्पोर बनना थम जाता है। अब उनकी जगह एक नए प्रकार के बीजाणु (टेल्यूरोस्पोर) बनने लगते हैं। ये बाहर से काली धारियों के रुप में दिखाई देते हैं। प्रत्येक टेल्यूरोस्पोर डंठलयुक्त, मोटी भित्ती एवं दो कोशिका वाले होते हैं। इनकी प्रत्येक कोशिका में दो केंद्रक पाए जाते हैं।

पक्सीनिया की तीसरी बीजाणु अवस्था भूमि पर पड़े गेहूं के सूखे डंठलों पर सम्पन्न होती है। अनुकूल परिस्थितियां मिलते ही ये टेल्यूरोस्पोर अंकुरित होते हैं। इन पर उपस्थित अंकुरण छिद्र से एक धागेनुमा कवक तंतु (प्रोमाइसीलियम) निकलता है। अब टेल्यूरोस्पोर की कोशिका में स्थित द्विगुणित केंद्रक इन तंतुओं में चले जाते हैं। वहां पहुंचकर प्रत्येक केंद्रक चार केंद्रकों में बंट जाता है। इनमें से दो केंद्रक एक प्रकार के और अन्य दो दूसरे प्रकार के होते हैं। इन्हें हम (+) एवं (-) प्रकार कह सकते हैं। ये हवा द्वारा फैलते हैं और आगे की कहानी पहाड़ों पर परवान चढ़ती है।

हवा की सहायता से ये बैसीडियोस्पोर (चौथे प्रकार के बीजाणु) पहाड़ों का रुख करते हैं। रास्ते में इन्हें बारबेरी का पौधा मिल जाए तो आगे की कहानी उसी मंच पर पूरी होती हो जाती है।

ये बीजाणु बारबेरी की पत्तियों की ऊपरी सतह पर अंकुरित होते हैं। यहां भी प्रवेश स्टोमेटा के ज़रिए ही होता है। यह कवक तंतु स्टोमेटा के नीचे एक जाल-सा बना लेता

है जो एक केंद्रक वाला होता है। यानी उसकी प्रत्येक कोशिका में केवल एक ही केंद्रक होता है। (+) प्रकार के बीजाणु के अंकुरण से (+) प्रकार के पिक्नीडिया (कपनुमा रचना) बनते हैं और (-) प्रकार के बीजाणु से (-) प्रकार के पिक्नीडिया। ये अंकुरण के तीन-चार दिन में ही बन जाते हैं। प्रत्येक पिक्नीडियम से दो प्रकार के कवक तंतु बाहर निकलते हैं। पहले स्पर्मेशियोफोर जिनसे स्पर्मेशिया (स्पर्म) का निर्माण होता है और दूसरे कुछ लंबे जिन्हें ग्राही कवक तंतु कहते हैं। इन्हें मादा तंतु भी कहा जाता हैं।

बारबेरी की एक पत्ती पर ही ऐसे कई पिक्नीडिया बने होते हैं। अब इनके खुले सिरों (ओस्टियोल) से शहद जैसा मीठा द्रव निकलता है जिसे चखने छोटे-छोटे कीट-पतंगे पहुंचते हैं। स्पर्मेशिया इन जंतुओं पर चिपक जाते हैं। जब एक पिक्नीडियम (+) के स्पर्मेशिया दूसरे पिक्नीडियम (-) के ग्राही तंतु पर चिपकते हैं तो निषेचन क्रिया हो जाती है। यह एक प्रकार का लैंगिक प्रजनन है जिसके फलस्वरूप एक नया दो केंद्रकीय कवक तंतु बनता है जो पत्तियों की निचली सतह का रुख करता है। ये वहां फिर एक नई रचना बनाते हैं जिससे ऐसीडियम या ऐसीडियल कप बनते हैं। इन ऐसीडियल कप में एक कतार में एक के पीछे ढेर सारे ऐसिडोस्पोर लगे रहते हैं। पत्ती की निचली सतह के फटने पर ये दो केंद्रक वाले बीजाणु निकलकर हवा में बिखर जाते हैं। ये ऐसिडोस्पोर पुनः बारबेरी पर संक्रमण नहीं कर सकते। ये नए गेहूं के पौधों पर ही अंकुरण करते हैं और वहां रोग फैलाते हैं।

इस तरह *पक्सीनिया ग्रेमिनिस ट्रीटीसी* की यह लंबी प्रेम कहानी मैदानों से शुरू होकर पहाड़ों तक और फिर मैदानों तक चक्कर चलाती रहती है। जिसमें गेहूं, बारबेरी, हवा, पानी व तरह-तरह के कीट-पंतगों की सहायक भूमिका होती है। दांतों तले उंगली दबाने वाली बात यह है कि केवल सूक्ष्मदर्शी की मदद से ही दिखाई देने वाले इन परजीवी जीवों का इतनी जटिल जीवन चक्र कैसे विकसित हुआ होगा।

यह तो सच है कि गेहूं और गेरूआ का यह साथ हज़ारों साल पुराना है। इस कहानी में एक नया मोड़ आया है *यूजी-99* नामक किस्म के साथ। इस रोग के भारत से बाहर फैलने और भारत में आने की संभावना की शोध कथा अगली बार। ***(स्रोत फीचर्स)***

अगले अंक में

स्रोत जनवरी 2009
अंक 240

- **चांद, मनुष्य और चंद्रयान**
- **भूख का बाज़ार**
- **गणित की मदद से आत्मरक्षा**
- **कंकाल बना पक्षी प्रजनन में रोड़ा**
- **ये जीन भी क्या आयटम है!**